International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2016; Page No. 51-54

स्त्री की कविताओं में स्त्री

भावना मासीवाल

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र, भारत।

सारांश

साहित्य में महिलाओं का लेखन के स्तर पर आना और लेखन के माध्यम से अपनी तत्कालीन सामाजिक पारिवारिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक स्थिति को उजागर करना, एक साहसिक काम रहा है। साहसिकता का संदर्भ उनके लेखन पर लगाए इल्जामों से भी है। जहाँ उनके लेखन को परिवार तक ही सीमित होने की बात कही गई जो कुछ स्तर सही भी है। साहित्य में स्त्री लेखन के प्रति यह मानसिकता समाज के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की मांग करता है। आखिर क्या कारण रहा कि उनका लेखन का दायरा सीमित रहा। अक्सर महिलाएं स्वयं भी यह सवाल उठाती है कि आज भी समाज में यदि पुरुष अपने परिवार का त्याग करके सामाजिक कर्म से जुड़ता है तो वह महापुरुष कहलाता है क्योंकि उसने अपने काम की प्राथमिकता में अपने परिवार का त्याग किया। दूसरी ओर यदि कोई महिला इस तरह का विचार करती है तो तुरंत वह आक्षेपों के घेरों में खड़ी कर दी जाती है। ऐसे में कैसे समानता और बराबरी की बात साहित्य और समाज में की जा सकती है। यदि हम इतिहास की ओर रुख करते हैं तो राजा सिद्धार्थ के महात्मा बुद्ध बनने की प्रक्रिया का आभास हो आता है। क्या महिलाओ के संदर्भ में यह विचार स्वीकार्य है। साहित्य भी समाज से इत्तर नहीं है बल्कि कहा जा सकता है कि साहित्य समाज की मानसिकता का प्रतिबिंब है। क्योंकि साहित्य के भीतर भी स्त्री और पुरुष लेखक और लेखन के बीच द्वंद्व उभरता देखा गया है और उस के कारणों को जानने का प्रयास भी किया गया।

मूलशब्द: जेंडर दृष्टि, समाजीकरण, मीडिया, स्त्री लेखिकाएं, कविताएँ, शकुंतला माथुर, कीर्ति चौधरी, निर्मला पुतुल, सविता सिंह, हुस्न तब्बसुम निहाँ, जया जादवानी, अर्चना वर्मा, अनामिका, वर्तिका नंदा, कात्यायनी

प्रस्तावना

लेखन के क्षेत्र में महिलाओं का आना अकस्मात नहीं था। लेखन उनकी सामाजिक, पारिवारिक स्थितियों के साथ ही उनके अपने वजूद की तलाश का एक माध्यम रहा। महिला लेखन आधुनिक युग की शुरुआत नहीं है बल्कि इसकी जड़े तो 1882 में बंगाल की मोक्षदायनी मुखोपाध्याय के कविता संग्रह बनप्रसून से मिलनी आरम्भ हो जाती है। और पीछे जाते है तो भक्तिकाल में अक्का महादेवी और मीराबाई का नाम आता है। आधुनिक में महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान महत्वपूर्ण है। महादेवी वर्मा के काव्य पर तो यह आरोप भी लगता रहा की उनका लेखन उनके जीवन की आत्मभिव्यक्ति है। वह बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से जिसे उभारती हैं। प्रयोगवाद के स्तम्भ कहे जाने वाले तारसप्तको में दूसरे तारसप्तक की शकुंतला माथुर और तीसरे की तारसप्तक की कीर्ति चौधरी जिसमें प्रमुख नाम है दूसरे तार सप्तक की शकुंतला माथुर, स्वयं या यूँ कहे की स्त्रियों के कविता लिखने के अपने कारण को उजागर करते हुए लिखती हैं कि–'नारी का सुख केवल घर–गृहस्थी तक ही सीमित है, यह मैं नहीं मानती। गृहस्थी के साज–सवार के बाद भी वह पूरा संतोष नहीं कर पाती, उसे लगता है जैसे वह अपूर्ण है। उसकी सांसारिक और व्यवहारिक सुख साधना की पूर्ति होने पर भी वह एक सामाजिक अभाव महसूस करती है और वह है मानसिक विकास।... इसलिए सब प्रकार का सुख होते हुए भी इस अभाव की पूर्ति मुझे काव्य में मिली।.. काव्य का माध्यम मैंने इसलिए अनायास अपना लिया और इसे अपनाकर मुझे इतना सुख मिला कि मेरे शेष अभावों की पूर्ति हो गई'। अभावों की पूर्ति का संदर्भ यहाँ स्व को पाना है। इसी तरह तीसरे सप्तक में कीर्ति चौधरी लिखती हैं कि 'कविताएँ ही बहुत कुछ, मैं और मेरा जीवन दर्शन'है। उस दौर तक महिला लेखन का आशय खुद को अभिव्यक्त करना रहा। जीवन के खालीपन को भरना था। यह खालीपन मानसिक जद्दोजहद से जुड़ा था।

आज के समय में देखें तो अर्चना वर्मा, अनामिका, गगन गिल, जया जादवानी, कात्यायनी, निर्मला पुतुल, हुस्न तब्बसुम निहाँ, वर्तिका नंदा, सविता सिंह आदि नाम हमारे समक्ष मौजूद है। यह लेखिकाएं अपनी कविताओं में सिर्फ स्वयं को ही अभिव्यक्त नहीं करती बल्कि अपने समय, समाज व उसके तत्कालीन परिवेश की घटनाओं को भी अपनी कविता का केंद्र बनाती है। अर्चना वर्मा की कविता दिल्ली 84 वर्तिका नंदा की कॉमनवेल्थ गेम्स 2010, मीडिया नगरी, कात्यायनी की नए राम राज्य का फरमान, गुजरात 2002 रस्म दो और तीन, अनामिका की गणतंत्र दिवस, आजादी, अंगरेजी यू भेजती है, बम, दंगे और कर्मकांड, दलित महासंघ की बैठक से लौटते हुए आदि कविताएँ मुख्य है। परंतु स्त्री लेखन में स्त्रियाँ खुद को किस रूप में लेकर सामने आ रही हैं, यहाँ यह सवाल अधिक महत्वपूर्ण है। जैसा कि बच्चन सिंह' लिखते हैं कि लेखिकाओं को दुनिया को अलग से विश्लेषित करने की आवश्यकता इसलिए है कि वह पुरुषों की दुनियां से थोड़ी भिन्न होती है"। इसलिए कविताओं के माध्यम से स्त्री जीवन के जिन सवालों को उठा रही है आज जानना आवश्यक है ?

आज स्त्री कविता में 'स्व' की आत्माभिव्यक्ति के साथ–साथ समाज को भी अभिव्यक्त कर रही हैं। वह समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान महिलाओं को देह तक सीमित किए जाने की मानसिकता का खंडन कर रही है। जहाँ पितृसत्ता सोचती है कि महिला की देह ही उसका सारा वजूद है। इसी कारण वह उस पर अधिकार करने के लिए, चरित्र पर दोषारोपण और बाद में बलात्कार जैसे कृत्य को हथियार के रूप में इस्तेमाल करता है। वह उसकी देह की सुरक्षा में आजीवन सतर्क रहता है, सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से। मगर वह भूल जाता है कि उस देह के भीतर भी एक मन है जो प्यार, लगाव और साथी चाहता है। न कि देह तक सिमट कर रह जाना। 'क्या तुम जानते हो' कविता में निर्मला पुतुल लिखती हैं कि "तन के भूगोल से परे एक स्त्री के मन की गांठे खोलकर/ कभी पढ़ा है तुमने/उसके भीतर का खोलता इतिहास/अगर नहीं/तो

फिर जानते क्या हो/रसोई और बिस्तर के गणित से परे? एक स्त्री के बारे में.... " यह बात केवल निर्मला पुतुल ही नहीं कहती बल्कि जया जादवानी और कात्यायनी भी लिखती हैं। क्योंकि स्त्री देह के भीतर जाकर कभी किसी ने जाना ही नहीं की स्त्री क्या चाहती है। स्त्री विमर्श भी शुरूआती दौर में कोरा देह विमर्श रहा। जो अपने आप में बहस का अलग मुद्दा है। मगर इसने भी स्त्री को सेक्स सिंबल ही बना कर रख दिया।

यह सही है कि हर इंसान की अपनी यौन जरूरतें होती हैं मगर यह उसका संपूर्ण अस्तित्व तो नहीं कहा जा सकता है। जया जादवानी 'स्त्रियाँ' कविता में लिखती हैं कि 'वे हर बार छोड़ आती हैं/अपना चेहरा/उनके बिस्तर पर सारा दिन बिताती हैं/जिसे ढूंढने में/रात खो आती हैं" रात को चेहरे का खो जाना वास्तविकता में स्त्री के अस्तित्व का खो जाना है जहाँ परिवार और समाज में वह देह से अधिक कुछ नहीं हैं। उसकी देह मात्र पुरुष की जरूरत है मगर उसका अस्तित्व नहीं। इसी संदर्भ को कात्यायनी 'देह न होना' कविता में उजागर करती हैं वह लिखती हैं "देह नहीं होती है/एक दिन स्त्री/और उलट–पुलट जाती है सारी दुनिया अचानक !"

सविता सिंह अपनी कविताओं में स्त्री को देह बना दिए जाने की राजनीति को उजागर करती है। शहरीकरण की विकास प्रक्रिया कहे या भूमंडलीकरण दोनों ने ही अपने अनुकूल एक नई स्त्री की छवि को गढ़ा है। यह छवि विज्ञापनों से लेकर फिल्मों तक में मौजूद है। जहाँ स्त्री की स्वतंत्रता का एक मात्र मानक देह है। 'परंपरा' कविता में सविता सिंह लिखती हैं कि "इन नगरों के साथ निर्मित की गयी एक स्त्री भी/जिसकी आत्मा बदल गयी उसकी देह में"। यहाँ व्यक्ति से अधिक देह की महत्ता को उजागर किया। इसमें मीडिया की विशेष भूमिका रही। डी.ओ के अधिकांशतः विज्ञापनों में महिलाएं सेक्स सिम्बल के रूप में दिखाई जाती है या अंडरगारमेंट्स के विज्ञापन में 'सर्दी में भी गर्मी का अहसास' महिलाओं को दिखाते हुए कहा जाता है। महिलाओं की शारीरिक बनावट कैसी हो इसका भी निर्णय मीडिया विज्ञापन के जरिए संप्रेषित करता है 'डाबर हनी जेंअलस हस्बैंड' जैसे विज्ञापन में इसे देखा जा सकता है। इस तरह पूंजी भी अपनी सत्ता को बचाए रखने के लिए महिलाओं को देह रूप में इस्तेमाल होने के लिए तैयार करती है। पूंजी कभी स्त्रियों के उत्पादन और पुनरउत्पादन के दोहरे श्रम पर उस रूप में बातचीत नहीं करती जिस रूप में देह पर करती है।

आज भी महिलाएं उत्पादन और पुनरउत्पादन के श्रम से लगातार जूझ रही है। मगर उनके श्रम को आज भी सम्मानीय नहीं माना गया। उनके घरेलू कार्य को आज भी खाली समय के सदुपयोग अन्यथा उनके कर्तव्य के रूप में लिया जाता है। इसी कारण स्त्री लेखिकाएं स्त्री की दिनचर्या की जद्दोजहद को भी कविता का हिस्सा बनाती है। अर्चना वर्मा की कविता 'दिनचर्या' इन्हीं सवालों को कविता के माध्यम से उठाती हैं "आज उसने फिर/एक कविता उमेठ कर/अंगीठी में लगायी/और चाय का पानी चढ़ाया.../आज उसने फिर तुम्हारा जूता चमकाया/तुम्हारे दुर्भाग्य का जिम्मेदार/अपनी जन्मपत्री को ठहराया../आज उसने फिर/तुम्हारे गलत को गलत/नहीं कहा/बच्चे को बेबात पड़ा थप्पड/अपने गाल पर सहा.../आज भी उसने थकी हारी देह को/स्वागत में सजाया " परिवार में महिलाओं की स्थिति आज भी पति, बच्चे, दफ्तर और बिस्तर तक ही कैद है। उसका वजूद इन सब के बीच घुटता है। परंतु अपनी इस घुटन को वह चुपचाप सहती है। कविता के रूप में हर रात उसे ढालती है और अगले दिन की शुरुआत में लग जाती है।

इसी क्रम में वर्तिका नंदा की कविता 'मरजानी' भी उभरती है। मरजानी जिसका अपना नाम कब गुम हो गया वह नहीं जान पायी। आज याद करती है तो शादी के कार्ड पर लिखा था कभी उसे याद आता है या कभी जरूरी कागजों में। आज उसका सिर्फ एक नाम था मरजानी। मरने के बाद भी उसे ही कोसा गया। क्योंकि वह गलत दिन मरती है सब की व्यस्तताएं है। ऐसे में उसका मरना एक दिन बेकार करना था। "मरजानी तो अभी भी है/पुराने कपड़ो में लिपटी हुई/बैठक के एक कोने में पटकी हुइ/हाँ, मौत से पहले/अगर तैयार कर लिया होता खुद ही/बाकी सामान/तो न होता किसी का सोमवार बेकार" मरजानी अपने परिवार में एक वस्तु से अधिक कुछ नहीं थी। उसे घर के हर कोने की खबर थी मगर उस घर में मौजूद उसके पुरुष को कुछ भी न ज्ञात था। उसे चिंता थी सोमवार के बेकार होने की। आज भी मध्यवर्गीय परिवारों में महिलाओं की स्थिति इसी रूप में देखने को मिलती है। जिनका वजूद घर में बेकार पड़ी वस्तु से अधिक कुछ नहीं होता। जबकि घरेलू श्रम से लेकर उत्पादन और विशेष रूप से पुनरउत्पादन की प्रक्रिया से वह लगातार जूझती है।

स्त्री विद्रोह करती है, इस उत्पादन और पुनरउत्पादन की प्रक्रिया का। वह बाहर आकर अकेली जीना चाहती है। मगर समाज उसे जीने नहीं देता है। यहाँ समाज का आशय पितृसतात्मक मानसिकता से है। अकेली स्त्री जिसके लिए सदैव संदेह के घेरे में होती है। क्योंकि उसकी देह किसी की गुलाम नहीं होती है। 'जब वी मेट' फिल्म में नायिका द्वारा प्रयुक्त संवाद कि 'लड़कियां खुली तिजौरी होती है उन्हें संभलकर रहना चाहिए'। यही संदर्भ कविता में भी उभरता है और वर्तिका नंदा 'स्त्री' कविता में लिखती हैं "परी मेरी बेटी नहीं है/राजा दामाद नहीं है/लेकिन मैंने मन ही में करा दी है उनकी शादी/अकेले नहीं रखना चाहती थी मैं परी को/जानती हूँ अकेली को निगल लेती है दुनिया" समाज उसे अकेली जानकर उसका शोषण न कर सके इसलिए वह परी की शादी कर देती है। यहाँ विवाह को समाज ने सुरक्षा का मानक माना है। इसी कारण मुगल आक्रमण के दौरान सबसे पहले महिलाओं के विवाह की उम्र कम हुई और बाल विवाह की शुरुआत की गई। ताकि स्त्री के अकेले रहने का सवाल ही न रहे।

हम भूल जाते है कि आज के दौर में सबसे अधिक शोषण वैवाहिक संबंधों में मौजूद है। मेरिटल रेप केसिस इसी का एक हिस्सा है। इसी कारण बहुत सी महिलाएं विवाह संस्था को चुनौती देने की कोशिश कर रही है। वर्तिका नंदा की कविता की माँ, बेटी की सुरक्षा विवाह में ढूंढ़ती है वही अनामिका की कविता की माँ अपनी बेटी को चादर के जरिए समाज की नजरों से बचाने के लिए प्रयासरत्त देखी जाती है। "मेरी माँ/अक्सर ही सोते में/मुझको उढ़ा देती है चादर !/डर लगता है उसको मेरी/बेपर्दगी से!/मुझे पता भी नहीं/क्या मेरी नींद मुझे बेपर्द करती है ?" लंबे समय से यह चादर इज्जत का सबक रहा है महिलाओं के लिए। और आज के परिवेश में जहाँ छोटी–छोटी बच्चियों और बुजुर्ग महिलाओं तक के साथ बलात्कार की घटना सामने आ रही है। ऐसे में एक माँ का अपनी जवान बेटी को चादर से ढकना वास्तविकता में समाज की नजरों से उसे बचाने का प्रयास है ।

एक माँ की बेटी के प्रति चिंता लाजमी है क्योंकि आज भी महिलाओं को स्त्री होना सीखाया जाता है। ताकि वह भी इतिहास पुराण और परम्पराओं में मौजूद स्त्री की छवि को निभा सके। स्त्री की पहचान का प्रश्न यहां सदा उभरा। पश्चिम में नारीवादी आंदोलन के दौरान भी और भारत में महिला आंदोलन के दौरान भी। भारत में यह आंदोलन शुरूआती दौर में सुधारवादी रहा। बाद में महिलाएं जब स्वयं आगे आई तो उन्होंने स्वानुभूति और सहानुभूति के फर्क को महसूस किया। उन्होंने महसूस किया कि महिला शिक्षा की हिमायत करने वाले भी कहीं न कहीं उसी पितृसत्तात्मक मानसिकता से गढ़े गए है। इसी कारण उनकी सैद्धान्तिकता व व्यवहारिकता में अंतर देखा जाता है।

अनामिका की कविता 'बेवजह' समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान बचपन से दी जा रही इसी शिक्षा पर केंद्रित है। जो मानसिक रूप से स्त्री के भीतर उसकी सामाजिक छवि को गढ़ता है कि औरत का अपना कोई घर नहीं होता। वह हवा, धूप, मिट्टी सी होती है की शिक्षा देता है "जिनका कोई घर नहीं होता/उनकी होती है भला कौन–सी जगह ?...जो छूट जाने पर/औरत हो जाती/कटे हुए नाखूनों/ कंघी में फंसकर बाहर आए केशों–सी/ एक दम से बुहार दी जानेवाली ?" मगर अनामिका की स्त्री सचेत है। वह इसका विरोध करती है। वह स्त्री को परंपरा और इतिहास के संदर्भों से बाहर निकालकर उसके अपने रूप में समझे जाने की बात करती है। क्योंकि स्त्री ने बहुत संघर्षों के बाद खुद को परम्परागत छवियों से निकाला है जिनमें वह महज देह थी। अनामिका लिखती हैं –"सारे संदर्भों के पार मुश्किल से उड़कर पहुंची हूँ/ ऐसे ही समझी–पढ़ी जाऊ/ जैसे अधूरा अभंग"। निर्मला पुतुल की कविताओं की स्त्री भी खुद अपनी ही दृष्टि से पहचाने जाने की बात करती है। 'अपनी जमीन तलाशती बैचेन स्त्री' कविता में वह लिखती हैं कि "यह कैसी विडम्बना है/कि हम सहज अभ्यस्त हैं/एक मानक पुरुष–दृष्टि से देखन/ स्वयं की दुनिया/ मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखते/मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से..."

स्त्री का संघर्ष आज का नहीं बल्कि सदियों का है। वह समाज और इतिहास में मैत्रयी और गार्गी के रूप में शोषित व कुचली जाती है। इन सबके बावजूद आज भी उसकी मौजूदगी का अहसास जिंदा है। यह अहसास स्त्री चेतना के रूप में देखा जा सकता है। आज हर घर में मैत्रयी और गार्गी मौजूद है जो उस समय अपनी मर्यादा के कारण चुप रह गई। मगर आज वह सवाल कर रही है। आज भी वह बार–बार दबाई जाती है, कभी कुटी जाती है, कभी फाँसी पर चढ़ायी जाती है तो कभी मसली जाती है। मगर वह इतने में कहा चुप रहने वाली थी। उसका विरोध हर बार एक नए रूप में उभरता है कभी सात भाइयों की बहन बनकर चंपा के रूप में, तो कभी अमरबेल के रूप में, कभी तालाब में जलकुम्भी के जालो के बीच नीलकमल के रूप में और कभी फिर से चंपा बनकर हर घर के दरवाजे के बाहर उभर आती है। चंपा का हर दरख्त पर उग आना उसके विद्रोह के साथ–साथ स्त्री चेतना को बिंबित करता है।सात भाइयों के बीच चंपा कविता में कात्यायनी लिखती है कि "सात भाइयों के बीच/चंपा सयानी हुई/..बाप की छाती पर सांप सी लोटत/सपनों में/काली छाया सी डोलत/सात भाइयों के बीच चंपा सयानी हुई/ओखल में धान के साथ कूट दी गय/भूसे के साथ कूड़े पर फेंक दी गई/वह अमरबेल बनकर उग/....फिर से घर आ धमकी/.. सात भाइयों के बीच सयानी चंपा/एक दिन घर की छत से/लटकती पायी गयी/तालाब में जलकुम्भी के जालों के बीच दबा दी गयी/ वहां एक नीलकमल उग आया/चंपा फिर घर आ गयी/देवता पर चढ़ाई गयी/मुरझाने पर मसलकर फेंक दी गय/जलायी गयी/उसकी राख बिखेर दी गयी/पूरे गाँव में/रात को बारिश हुई झमड़कर/अगले ही दिन हर दरवाजें के बाहर नागफनी के बीहड़ घेरों के बीच निर्भय–निस्संग चंपा/ मुस्कुराती पायी गयी" इस तरह चंपा का नागफनी के बीहड़ घेरों के बीच मुस्कुराता पाया जाना प्रतीक है स्त्री की सजगता और चेतना का कि सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर स्त्रियाँ अपने अधिकार के प्रति आज सजग हो रही है। बैखौफ होकर विरोध कर रही है साथ ही अपने होने का अहसास करा रही है।

कात्यायनी की कविताओं के स्त्री चरित्र अपने जीवन के प्रति सजग हैं। वह अँधेरे में भी रौशनी की तलाश करते हैं। नाउम्मीदगी में भी उम्मीद उनके यहाँ मौजूद है। हॉकी खेलती लड़कियां कविता ऐसी ही बदलाव की कविता है। आज शुक्रवार का दिन हैं/और इस छोटे से शहर की ये लड़कियां/खेल रही हैं हॉकी/खुश हैं लड़कियां फिलहाल खेल रही हैं हॉकी/ कोई डर नही/ बॉल के साथ दौड़ती हुई/हाथों में साधे स्टिक/वे हरे घास पर तैरती हैं– चूल्हें की आँच से/मूसल की धमक स/दौड़ती हुई/बहुत/दूर/आ जाती हैं/वहां इन्तजार कर रहे हैं/उन्हें देखने आये हुए वर पक्ष के लोग/...लड़कियां हैं..कि हाकी खेल रही हैं/पैनाल्टी कार्नर मार रही हैं...वे चीख रही हैं, सीटी मार रही हैं, और बिना रूके भाग रही हैं/एक छोर से दूसरे छोर तक / उनकी पुष्ट टांगे चमक रही है/नृत्य की लयबद्ध गति के साथ/और लड़कियां हैं कि/निर्द्वंद्व/निश्चित हैं/बिना यह सोचे कि मुंह दिखायी की रस्म करते समय सास क्या सोचेगी/इसी तरह खेलती रहती लड़कियां निस्संकोच–निर्भीक..../।

हुस्न तब्बसुम निहां की कविताओं की स्त्री भी स्त्रियों के स्त्रीत्व को बंदी बनाए जाने की बात करती है। उनकी कविताओं की स्त्री जानती है कि स्त्री की कोई जाति नहीं होती है न कोई धर्म होता है। सदियों से पहले पिता फिर पति के द्वारा उसकी जाति और धर्म निश्चित किए जाते रहे हैं। यदि उसे खुद को इस बंधन से बचाना है तो उसे उसकी अपनी जाति अर्थात स्त्री जाति को पहचाना होगा। हुस्न तबस्सुम निहां की कविता की स्त्री बहनापे की बात करती है। क्योंकि समाज में महिलाओं को भी जाति, घर्म के आधार बाँट दिया जाता है। यहाँ संगठित होकर अपने को पहचानने की बात वह करती है। 'सुनो लड़कियों!' कविता में वह लिखती हैं कि "सुनो लडकियों !/बचा लो अपने आप को/कि पंख कतर दिए जाएंगे/स्थगित कर दी जाएंगी उड़ान/...तोड़ दो बंद वर्जनाओं के कि तुम हिन्दू नहीं, मुस्लिम नहीं, यहूदी या सिक्ख नही/तुम्हारी स्वतंत्र अपनी जात है...लड़की जात ..(औरत जात)/कि तुम जातियों की अस्थियाँ नहीं ..." हुस्न तब्बसुम निहां जहाँ स्त्री को जाति और धर्म से मुक्त होकर स्त्री के अहसास और अधिकार के साथ जीने की बात करती है वहीं सविता सिंह की कविताओं की स्त्री इतिहास को दोषी मान रोती और विलाप करती देखी जाती है। यह विलाप उस इतिहास और परंपरा के प्रति था जिसने इतिहास से महिलाओं को दूर रखा। 'बैठी है औरते विलाप में' कविता में सविता सिंह लिखती हैं कि "बैठी है एक साथ गठरी बन/बिसूरती/रोती विलाप करती स्त्रियाँ/करती शापित पूरे इतिहास को/जिसमें उसके लिए अंधकार का मरुस्थल बिछा है"।

स्त्री की कविताओं में एक कलाकार और लेखिका स्त्री का दर्द भी मौजूद है। समाज में साहित्यिक कार्यक्रमों के दौरान जिसे सम्मान पट्टिकाएं दी जाती हैं परंतु अपने ही घर में वह अपमानित होती है। स्त्री लेखन को शुरूआती दौर से दोयम दर्जे का देखे जाने की मानसिकता साहित्य में भी उपलब्ध रही है। जैसा कि राजेन्द्र यादव लिखते है कि स्त्रियों का लेखन "सुखी-समृद्ध पुरुषों की ऊबी हुई पत्नियों का लेखन है"दूसरी ओर नामवर सिंह जैसे लेखक स्त्री लेखन पर आरोप लगाते हैं कि "स्त्री को तो सिर्फ इसलिए छाप दिया जाता है कि वह स्त्री है"। साहित्य के भीतर जब बौद्धिक वर्ग की स्त्री लेखन के प्रति इस तरह की सोच मौजूद है तो आम व्यक्ति से क्या अपेक्षा की जाएगी कि वह लेखन के क्षेत्र में सक्रिय महिलाओं के लेखन का सम्मान करें। क्योंकि इस स्तर तक पहुँचने के लिए उन्हें कितने संघर्षो का सामना करना पड़ा। बावजूद इन सब के स्त्री यदि कलाकार या लेखक है। परिवार में संदेह के घेरे में देखी जाती है। उसके काम की फेरिस्त लंबी होती है उनमें गलती होना हिंसा को जन्म देता है। अनामिका 'महिला कलाकार' कविता में लिखती हैं कि "कमरे में लटकी हैं/इनकी सम्मान पट्टिकाएं !/स्थानीय महिला–मंडल के/सालाना जलसे में/रंगारंग सांस्कृतिक गतिविधियों की खातिर अर्पित/ सम्मान–पट्टिकाएं/हंसती हैं मजबूर माँ की हँसी/जब घर में होती है कल्याणियों की/धुरछक मरम्मत–/जरूरत से ज्यादा जो बन जाए सब्जी/जरूरत से ज्यादा जो फोन चले आएं या/बिखरी

किताबें हो टेबुल पर...."पितृसत्तात्मक मानसिकता के तहत पुरुष अपने से अधिक सशक्त महिला को परिवार में बर्दाश्त नहीं कर पाता है। और यही हिंसा का कारण बनता है। आज भी लेखन में सक्रिय बहुत सी महिलाएं इस तरह की मानसिकता से शोषित देखी जा सकती हैं।

कुल मिलाकर देखा जाए तो स्त्री अपनी कविताओं में हर जगह मौजूद है। वह परिवार के भीतर भी है और बाहर भी। उनकी मौजूदगी उनके अस्तित्व की प्रमाणिकता है। वह स्वानुभूति और सहानुभूति के बीच के अंतर पर लिखती हैं। उनका लेखन निजी होकर भी सामाजिक यथार्थ को सामने लाता है। वह स्त्री लेखन पर किए गए आक्षेपों पर लिखती हैं जहाँ एक बड़ा लेखक वर्ग उनके लेखन को हेय दृष्टि से देखता है। इस प्रकार स्त्री की कविताएँ उनका अपना भोगा हुआ यथार्थ है। जिस पर तमाम तरह के आक्षेप लगते रहे और लगाए जाते रहे हैं। बावजूद इसके महिलाएं लेखन में सक्रिय रूप से लिख रही है और स्वयं को प्रमाणित करने का प्रयास कर रही है कि उनका लेखन उनका सच है। 'मैं सच कहूँगी मगर फिर भी हार जाउंगी/वह झूठ बोलेगा और लाजवाब कर देगा'। यहाँ लाजवाब करना तर्क के आधार खुद को सही साबित करने से है जबकि महिलाएं संवेदना और भावनात्मक स्तर पर सही होने के बावजूद हार जाती है। इस तरह स्त्री का लेखन भावनात्मक लेखन है। इसमें तर्क से अधिक संवेदनाओं का महत्व है।

संदर्भ सूची

1. कवि ने कहा (चुनी हुई कविताएं), कात्यायनी, किताबघर प्रकाशन, संस्करण–2012,नई दिल्ली।
2. चाँद–ब–चाँद, हुस्न तब्बसुम 'निहां', बोधि प्रकाशन, संस्करण–2013,जयपुर।
3. अपने जैसा जीवन, सविता सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण–2003, दिल्ली।
4. अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर, अर्चना वर्मा, मेधा बुक्स, संस्करण–2008, दिल्ली।
5. खुरदरी हथेलियाँ, अनामिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण–2005, नई दिल्ली।
6. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण–2004,नई दिल्ली।
7. लौटा है विजेता, अर्चना वर्मा, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2007, नई दिल्ली।
8. थी. हूँ ..रहूँगी..., वर्तिका नंदा, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2012,नई दिल्ली।
9. उठाता है कोई एक मुठ्ठी एश्वर्य, जया जादवानी, मेधा बुक्स, संस्करण–2009,दिल्ली।
10. दूसरा सप्तक, (सं.) अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, नौवा संस्करण–2006, नई दिल्ली।
11. तीसरा सप्तक , (सं.) अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, दसवां संस्करण–2005, नई दिल्ली ।
12. स्त्री मुक्ति का सपना, (सं).प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, वाणी प्रकाशन, आवृति–2014,नई दिल्ली ।
13. http://kavitakosh-org